www.thearyasamaj.org

स्थापना वर्ष:१९४२

नूतन निष्काम पत्रिका

नूतन निष्काम पत्रिका ❑ वर्ष-४ ❑ अंक-९ ❑ मुम्बई ❑ सितम्बर- २०१३ ❑ मूल्य-रु.९/-

१५ ऑगस्ट को आर्य समाज सान्ताक्रुज़ के सदस्यों एवं आर्य विद्या मन्दिर के बच्चोंने मिलकर झन्डावन्दन किया ।

सार्वजनिक वेद कथा (वेद प्रचार सप्ताह) के दौरान भजन गाते हुए कुमार योगेश आर्य एवं श्री प्रभाकर शर्मा ।

सार्वजनिक वेद कथा (वेद प्रचार सप्ताह) के दौरान डा. विनय वेदालंकार (वरिष्ठ उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तराखण्ड) प्रवचन देते हुए ।

आर्य समाज में १५ सितम्बर २०१३ को हुए 'पितृ-यज्ञ' कार्यक्रम में पधारे श्रीमती चन्द्रिका बेन पटेल (पत्नि श्री प्रवीणभाई पटेल प्रसिद्ध उद्योगपति)

www.thearyasamaj.org

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् । इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि ॥

(यजु. अ. १/मं. ५)

व्याख्यान १. –

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि सब मनुष्य लोग ईश्वर के सहाय की इच्छा करें, क्योंकि उसके सहाय के बिना धर्म का पूर्ण ज्ञान और उसका अनुष्ठान पूरा कभी नहीं हो सकता।

हे व्रतपते ! सत्यपते परमेश्वर ! (व्रतं) मै जिस सत्यधर्म का अनुष्ठान करना चाहता हूँ उसकी सिद्धि आपकी कृपा से ही हो सकती है। श.ब्रा.में इस मन्त्र का अर्थ लिखा है कि – ''जो मनुष्य सत्य के आचरणरुप व्रत को करते हैं वे 'देव' कहाते हैं, और जो असत्य का आचरण करते हैं उनको 'मनुष्य' कहते हैं।'' इसिलिए मैं सत्यव्रत का आचरण करना चाहता हूँ। (तच्छेकयं) मुझ पर आप ऐसी कृपा कीजिए जिससे मैं सत्यधर्म का अनुष्ठान पूरा कर सकूँ। (तन्मे राध्यताम्) उस अनुष्ठान की सिद्धि करने वाले एक आप ही हो। सो कृपा से सत्यरुप धर्म के अनुष्ठान को सदा के लिए सिद्ध कीजिए। (इदमहमनृतात्.) सो यह व्रत है जिसको मैं निश्चय से चाहता हूँ कि उन सब असत्य कामोंसे छूट के सत्य के आचरण करने में सदा दृढ रहूँ।

परन्तु मनुष्य को यह करना उचित है कि ईश्वर ने मनुष्यों में जितना सामर्थ्य रखा है, उतना पुरुषार्थ अवश्य करें। उसके उपरान्त ईश्वर के सहाय की इच्छा करनी चाहिए। क्योंकि मनुष्यों में सामर्थ्य रखने का ईश्वर का यही प्रयोजन है कि मनुष्यों को अपने पुरुषार्थ से ही सत्य का आचरण अवश्य करना चाहिए। जैसे कोई मनुष्य आँख वाले पुरुष को ही किसी चीज को दिखला सकता है, अंधे को नहीं। इसी रीति से जो मनुष्य सत्यभाव , पुरुषार्थ से धर्म को करना चाहता है, उस पर ईश्वर भी कृपा करता है अन्य पर नहीं। क्योंकि ईश्वर ने धर्म को करने के लिये बुद्धि आदि साधन जीव के साथ रखें हैं। जब जीव उनसे पूर्ण पुरुषार्थ करता है, तब परमेश्वर भी अपने सब सामर्थ्य से उस पर कृपा करता है, अन्य पर नहीं। क्योंकि सब जीव कर्म करनेमें स्वाधीन और पापों के फल भोगने में कुछ पराधीन भी हैं।

(ऋ.भा.भू. वेदोक्तधर्मविषय)

व्याख्यान २. –

हे सच्चिदानन्द स्वप्रकाशस्वरूप ईश्वराग्ने ! ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासादि सत्यव्रतों का आचरण मैं करूँगा। सो इस व्रत को आप कृपा से सम्यक् सिद्ध करें तथा मैं अनृत – अनित्य देहादि पदार्थों से पृथक् होके इस यथार्थ = सत्य जिसका कभी व्यभिचार = विनाश नही होता, उस विद्यादिलक्षण धर्म को प्राप्त होता हूँ। इस मेरी इच्छा को आप पूरी करें जिससे मैं सभ्य, विद्वान्, सत्याचरणी आप की भक्तियुक्त धर्मात्मा होऊँ।

पदार्थ (अन्वय सहित) –

हे **(व्रतपते)** सत्यभाषणादि व्रतों के पालक! **(अग्ने)** सत्यधर्म के उपदेशक ईश्वर ! **(अहम्)** धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को प्राप्त करने की इच्छा वाला मैं जो **(इदम्)** इस सत्यव्रत को **(अनृतात्)** मिथ्याभाषण, मिथ्याचरण, मिथ्या बात को मानने से अलग होकर **(सत्यम्)** जो वेद विद्या, प्रत्यक्षादि प्रमाणों, सृष्टिक्रम, विद्वानों का संग, श्रेष्ठ विचार और आत्म शुद्धि के द्वारा जो भ्रान्ति से रहित, सबका हितकारक, तत्त्व–निष्ठ सत्प्रभव है और जो अच्छी प्रकार परीक्षा करके निश्चय किया जाता है, जो **(व्रतम्)** सत्य भाषण, सत्याचरण, सत्यमानना रूप व्रत है उसका **(चरिष्यामि)** पालन करूँगा (तत् मे) मेरे उस व्रत का अनुष्ठान और पूरा होना आपकी कृपा से **(राध्याताम्)** सिद्ध हो। जिसे **(उपैमि)** जानने, प्राप्त करने व आचरण में लाने के लिए **(शकेयम्)** समर्थ होऊँ **(तत्)** वह व्रत भी सब आपकी कृपा से **(राध्यताम्)** सिद्ध हो।

(ऋ. दया. कृत यजुर्वेदभाष्य अ. १/मं.५)

भावार्थ –

ईश्वर सब मनुष्यों के पालन करने योग्य धर्म का उपदेश करता है जो न्याय, पक्षपातरहित, सुपरीक्षित, सत्य लक्षणों से युक्त, सर्वहितकारी, इस लोक व परलोक के सुख का हेतु है वही धर्म सब मनुष्यों को सदा आचरण करने योग्य है और जो इससे विरुद्ध अधर्म है उसका आचरण कभी किसी को नहीं करना चाहिए। इस प्रकार सब प्रतिज्ञा करें – हे परमेश्वर ! हम वेदों में आप से उपदिष्ट इस सत्यधर्म का आचरण करना चाहते हैं। यह हमारी इच्छा आपकी कृपा से अच्छी प्रकार सिद्ध होवे। जिससे हम अर्थ, काम, मोक्ष रूप फलों को प्राप्त कर सके और जिससे अधर्म को सर्वथा छोडकर अनर्थ, कुकाम, बन्धरूप दुःख फल वाले पापों को छोडने और छुडाने में समर्थ होवें।

जैसे आप सत्यव्रतों के पालक होने से व्रतपति हैं वैसे ही हम भी आपकी कृपा से, अपने पुरुषार्थ से यथा शक्ति सत्य व्रत के पालक बनें। इस प्रकार सदा धर्म करने के इच्छुक, शुभ कर्म करने वाले होकर सब सुखों से युक्त व सब प्राणियों को सुख देने वाले बने। ऐसी इच्छा सब सदा किया करें।

(ऋ. दया. कृत यजुर्वेदभाष्य अ.१/मं.५)

संकलन व संपादन :–
स्वामी ध्रुवदेव जी परिव्राजक (उपाध्यक्ष)
दर्शन योग महाविद्यालय, आर्यवन, रोजड,
पत्रा. – सागपुर, जि.–साबरकांठा(गुजरात) ३८३३०७,
फोन : ०२७७०–२८७४१८,२८७५१८.

❀❀❀

www.thearyasamaj.org

आर्य समाज सांताक्रुज, मुम्बई का मासिक मुखपत्र
वर्ष : ४ अंक ९ (सितम्बर-२०१३)

- दयानंदाब्द : १९०, विक्रम सम्वत् : २०७०
- सृष्टि सम्वत् : १,९६,०८,५३,११४

प्रबन्ध संपादक : चन्द्रगुप्त आर्य
संपादक : संगीत आर्य
सह संपादक : संदीप आर्य
कार्यकारी संपादक : विनोद कुमार शास्त्री
लालचन्द आर्य, रमेश सिंह आर्य,
यशबाला गुप्ता.

विज्ञापन की दरें : शुल्क

- पूरा पृष्ठ : रु. ३,०००/-
- एक प्रति : रु. ९/-
- १/२ पृष्ठ : रु. २,०००/-
- वार्षिक : रु. १००/-
- १/४ पृष्ठ : रु. १,५००/-
- आजीवन : रु. १०००/-
- विशेषांक की दरें भिन्न होंगी ।

वर्गीकृत विज्ञापन
रु. १०/- प्रति शब्द, न्यूनतम रु. ५००/-
चैक /डीडी / मनी आर्डर आदि 'आर्य समाज सान्ताक्रुज' के नाम से ही भेजें, मुंबई के बाहर के चैक न भेजे। विज्ञापन सामग्री १० तारीख तक भेजें। 'नूतन निष्काम पत्रिका' का मुद्रण ऑफसेट विधि से होता है।

पत्ता : आर्य समाज सांतक्रुज़
(विठ्ठलभाई पटेल मार्ग) लिंकिंग रोड, सांताक्रुज़ (प.), मुंबई -५४ फोन : २६६० २८००, २६०० २०७५

अनुक्रमणिका	पृष्ठ सं.
वेद मंत्र	२
सम्पादकीय	३
आर्य और आर्यावर्त्त	४
सन्ध्या योग	६
Glorious India of 1835	७
मेरे आचार्य महायात्रा पर	८
देखो, वरुण प्रभु का चमत्कार	१०
सन १८३५ का दैदीप्यमान भारत	१०
महापुरुष के लक्षण	११
याज्ञवल्क्य - गार्गी संवाद	१३
चतुरन की बात में बात-बात में बात	१५
विचार शक्ति का चमत्कार - ३	१६

सम्पादकीय आर्थिक गुलामी

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान आचार्य बलदेव जी ने आर्य समाज की तरफ से भारत के प्रत्येक देशवासी से सप्ताह में एक दिन निजी वाहन के स्थान पर सार्वजनिक वाहन का उपयोग करने को कहा है। पाठकों को स्मरण होगा कि इसी पत्रिका के माध्यम से कुठ समय पूर्व हमने यही विश्लेषण आपके समक्ष रखा था। आर्थिक उदारीकरण की आड़ में बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने इस देश में अपना कारोबार फैलाया । इस उदारीकरण के दुरूपयोग को कार उद्योग (Auto Mobile Industries) में देखिए। आर्थिक उदारीकरण के परिणामस्वरूप दुनिया भर की विदेशी कारों का यहाँ आना शुरू हो गया। परिणामस्वरूप उपभोगक्ताओं को साधन के विकल्प मिलने लगे। यहाँ तक तो ठीक है। किन्तु इन कारों की बिक्री को बढ़ाने के लिये बैंकों द्वारा शून्य व्याज पर कर्ज देना न्यायसंगत नहीं लगता। जिसकी हैसियत है, आवश्यकता है, यदि वह कार खरीदता है तो ठीक है। किन्तु पड़ोसी की देखा-देखी अनावश्यक प्रतिस्पर्धा की आड़ में बैंकों से कर्ज लेक कार लेना यह तो अपने आपको आर्थिक गुलामी की ओर ढ़केलने जैसा कदम है। इन कारों की अधिकता से पेट्रोल की खपत बढ़ती जा रही है। इसका दुष्परिणाम आज देश के सामने है। अस्तुः

यदि इस देश की आर्थिक प्रगति किसी देश की मुद्रा पर टिकी हुई है, यह तो और भी भयावह स्थिति है। अमीर देश आर्थिक संकट में है तो उसके मायने अलग हैं। लेकिन गरीब देश उसके संकट के कारण आर्थिक संकट में आ रहा है, तो इसके मायने कुछ और हो जाते हैं।

वस्तुतः आर्थिक उदारीकरण का समुचित लाभ सभी देशों को मिलना चाहिए। प्रत्येक देश की आवश्यकता इस उदारीकरण के माध्यम से पूरी होनी चाहिए तभी इसकी सार्थकता है। आर्थिक उदारीकरण की आड़ में बड़ी मछली छोटी मछली को खाये तो यह न्यायसंगत नहीं है। यह तो शोषण हुआ।बड़े-बड़े पूंजीपति अपने स्वार्थ के लिये विश्व व्यापार की आड़ में छल-कपट, गला काट प्रतिस्पर्धी को खत्म कर रहा है । कालान्तर में हम उन वस्तुओं के लिये उन देशों और कालान्तर में तथाकथित पूंजीपतियों के आधीन हो जायेंगे। आर्थिक उदारीकरण से हमें भी अपने आपको अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में स्थापित करने का सुअवसर मिला है, यह तो ठीक है, इस उदारीकरण का व्यक्तिपरक लाभ सोचते हुए हमारे देश के उद्योगपति विदेशी व्यापार को ही बढ़ाऐ, विदेशी पूंजी के निवेश की आड़ में विदेशीओं को ही लाभ पहुंचाए। तो इससे हमें सावधान रहना होगा। सरकारें आपसी समझौते के तहत बाध्य हो सकती है किन्तु हमारी राष्ट्रीयता, विवेक, अच्छे-बुरे का ज्ञान इसे हमें ही समझा होगा। प्रत्येक नागरिक को इस ओर जागरूक होना पड़ेगा। हर छोटी बड़ी वस्तुओं के प्रति विदेशी आकर्षण दिमागी दिवालिये पन की निशानी हैं। इसी संदर्भ में आचार्य बलदेवजी का आहवान हम सबको स्वीकार करना चाहिए। श्रेय मार्ग के पुजारी ही ऐसा आहवान कर सकते हैं। वरना आज जो दिख रहा है वह स्पष्ट है, हम आर्थिक गुलामी की तरफ बढ़ रहे हैं।

- संगीत आर्य
९३२३५ ७३८९२

www.thearyasamaj.org

आर्य और आर्यावर्त्त

डॉ. भवानीलाल भारतीय

इस देश के आदि निवासी कौन थे? उनका मूल स्थान कौन सा था? इस देश में निवास करने वाली जाति का वास्तविक नाम क्या है? ये कुछ ऐसे सांस्कृतिक प्रश्न है जिन्हें यदा कदा उठाया जाता है। विदेशी शासकों की प्रेरणा से जो इतिहास लिखे गये उसमें यह प्रयत्न किया गया था कि इस देश के निवासियों को बाहर से आकर बसने वाला सिद्ध किया जाय। ऐसा करने में शासक जाति का उद्देश्य स्पष्ट था। वे यह कह देना चाहते थे कि जिस प्रकार उन्होंने पश्चिम से आकर इस देश पर अपना आधिपत्य जमाया है, उसी प्रकार शताब्दियों पूर्व आर्य जाति ने भी दल बांध कर यहां प्रवेश किया तथा यहां की मूल निवासिनी जातियों का उन्मूलन कर इस देश पर अपना स्वत्व स्थापित किया था। विदेशियों के द्वारा साभिप्राय लिखे गये इस इतिहास से हमारे देश का क्या कल्याण हो सकता था?

पुनर्जागरण के महापुरुषों की एक बहुत बडी देन यह है कि उन्होंने इस देश के निवासियों को आत्म बोध प्रदान किया। हमारा मूल अधिष्ठान क्या है? इस देश के मूल निवासी हम स्वयं है। हमारे अतिरिक्त और कोई अन्य जाति यहां निवास नहीं करती थी, इन तथ्यों को सशक्त रूप से प्रतिपादित करना उनका लक्ष्य रहा। स्वामी दयानन्द ने इन सांस्कृतिक प्रश्नों का समाधान करने में पहल की। उन्होंने सत्यार्थप्रकाश में इस प्रश्न को इस रूप में प्रस्तुत किया - ''कोई कहते हैं कि यह (आर्य) लोग ईरान से आए इसी से इन लोगों का नाम आर्य हुआ है। इनसे पूर्व यहां जंगली लोग बसते थे कि जिनको असुर और राक्षस कहते थे।'' और उत्तर में लिखा - ''किसी संस्कृत ग्रन्थ में या इतिहास में नहीं लिखा कि आर्य लोग ईरान से आए और यहां के जंगलियों को लड कर जय पाके, निकाल इस देश के राजा हुए पुनः विदेशियों का लेख माननीय कैसे हो सकता है?''

स्वामी विवेकानन्द ने भी इसी मत की पुष्टि की है। उन्होंने अत्यन्त ओजस्वी शब्दों में यूरोपीय इतिहासज्ञों कें इस मत का खण्डन किया कि आर्यो का इस देश में आगमन कहीं बाहर से हुआ और यहां के मूल निवासियों को युद्ध में पराजित कर उन्होंने भारत को अधिकृत किया। वे लिखते है - '' यूरोपीय पण्डितों का यह कहना है कि आर्य कहीं से घूमते फिरते आकर भारत में जंगली जाति को मार काट कर और जमीन छीन कर स्वयं यहां बस गये, केवल अहमकों की बात है। आश्चर्य तो इस बात का है कि हमारे भारतीय विद्वान भी उन्हीं के स्वर में स्वर मिला कर कहते हैं और यही सब झूठी बातें हमारे बालकों को पढाई जाती हैं, यही भारी अन्याय है।''

आश्चर्य की बात यह है कि यूरापीय विद्वानों की इस उपपत्ति का कोई प्रमाण भारतीय साहित्य में उपलब्ध नहीं होता कि आर्य जाति बाहर से आई और यहां के तथाकथित आदिवासियों को पराजित कर उन्होंने अपना आधिपत्य जमाया। यदि टोली बांधकर आर्य लोग एकाधिक बार में ईरान या मध्य ऐशिया से भारत आए होते तो इस आगमन का उल्लेख इस देश के प्राचीन वाङ्मय में अवश्य होता। विवेकानन्द ने यही प्रश्न उन विदेशी विद्वानों से पूछा है - ''किस वेद के सूक्त में अथवा और कहीं तुमने देखा है कि आर्य दुसरे देशों से भारतवर्ष में आये ? इस बात का प्रमाण तुम्हें कहां मिला है कि उन लोगों ने जंगली जातिं को मार काट कर यहां निवास किया? बेकार इस अहमकपन की क्या जरूरत है?''

आर्यों के बाहर से आगमन के मत को प्रचारित करने के साथ-साथ पाश्चात्य विद्वानों ने एक और सिद्धान्त स्थापित किया, वह था आर्य और द्रविड सभ्यता के परस्पर विरुद्ध होने का। उनके अनुसार आर्यों को उत्तर भारत में फैलते तथा अपना अधिकार जमाने का अवसर मिला, जब कि दक्षिण भारत में वहां की मूल द्रविड संस्कृति यथावत्, आर्य प्रभाव से निर्लिप्त रह कर फलती फूलती रही। इस मत को प्रचारित कर विदेशियों ने इस देश के उत्तर और दक्षिण भाग में विरोध तथा वैषम्य के भावों को पल्लवित करना चाहा। उन्हें इस दुरभिसंधि को पूरा करने में पर्याप्त सफलता भी मिली। आज हम देखते हैं कि दक्षिण में और विशेषतया तमिलनाड प्रान्त में उत्तर भारत के निवासियों, उनकी भाषा, संस्कृति तथा धार्मिक आस्थाओं के प्रति प्रचण्ड विरोध और दौर्मनस्य का भाव पाया जाता है। दक्षिण में प्रचलित भाषा, संस्कृति, कला एवं स्थापत्य तक को उत्तर भारत की भाषा, संस्कृति तथा कलाओं से भिन्न सिद्ध किए जाने का यह परिणाम है कि रामायण वर्णित राम की लंका विजय को उत्तर भारत का दक्षिण को पादाक्रान्त करने का प्रयत्न समझा जाता है तथा संस्कृत भाषा एवं उसके साहित्य को पदे-पदे तिरस्कृत तथा पददलित किए जाने के प्रयास किये जा रहे है। मन्दिरों के पुजारियों तक को सरकारी आदेश दिए गये है कि वे अपने देवताओं की पूजा-अर्चना संस्कृत स्तोत्रों और गीतिकाओं के माध्यम न कर तमिल भाषा के माध्यम से करें। परकीयों

www.thearyasamaj.org

द्वारा बोई गई विरोध की यह विष वल्लरी निश्चय ही एकता, प्रेम तथा सद्भाव के फल नहीं दे सकती।

विवेकानन्द ने इस कपोल कल्पना का खण्डन किया कि उत्तर और दक्षिण में कोई मौलिक सांस्कृतिक विरोध है। आर्य-द्रविड प्रश्न का समाधान करते हुये उन्होंने स्पष्ट कहा - '' एक मत है कि दक्षिण भारत में द्रविडी नाम की एक जाति के मनुष्य थे जो उत्तर भारत की आर्य जाति से बिलकुल जुदे थे और दक्षिण भारत के ब्राह्मण ही उत्तर भारत से गये हुए आर्य हैं; वहां की अन्यान्य जातियां दक्षिणी ब्राह्मणों से सम्पूर्ण पृथक् जाति हैं। भाषा-तत्त्ववित् महाशय, मुझे क्षमा कीजिएगा, यह मत बिल्कुल बेजड है।'' सारे भारत में आर्य जाति के अतिरिक्त और कोई अन्य जाति निवास नहीं करती थी, यह मानते हुए उन्होंने इसी प्रसंग में कहा - ''सारे भारत के मनुष्य आर्यों के सिवाय और कोई नहीं।''

इसी भाषण में उन्होंने आर्यों के आदिम निवास स्थान का प्रश्न पुन: उठाया और पाश्चात्यों की भ्रान्त धारणाओं का खण्डन करते हुए उग्र स्वर में कहा - ''कुछ लोगों के मत से आर्य ऐशिया से आये - कुछ दिन हुये यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया था कि आर्य स्वीट्जरलैण्ड की झीलों के किनारे बसते थे। मुझे जरा भी दु:ख न होता अगर वे सब के सब, इन सब सिद्धांतों के साथ वहीं डूब मरते। आजकल कोई कोई कहते हैं, वे उत्तर मेरु में रहते थे? ईश्वर आर्यों और उनके निवास स्थलों पर कृपा रखे। इन सिद्धांतों की सत्यता के बारे में यही कहना है कि हमारे शास्त्रों में एक भी शब्द नहीं है जो प्रमाण दे सके कि आर्य भारत में कंहीं बाहर के किसी देश से आये।''

जिस प्रकार **स्वामी दयानन्द** ने इस देश को आर्यावर्त्त के प्राचीन नाम से अभिहित किया, उसी प्रकार देश निवासियों को 'आर्य' जैसे गौरवास्पद नाम से पुकारा। उनके मतानुसार आर्य शब्द में जो चारुता, अर्थ गौरव तथा महत्ता के भाव निहित हैं वे 'हिन्दू' शब्द में नहीं हैं। वस्तुत: फारसी भाषा के इस शब्द 'हिन्दू' के प्रति उनके मन में विरक्ति का भाव था जिसे वे यदाकदा अभिव्यक्त किये बिना नहीं रहते थे। पूना में दिये गये एक व्याख्यान में स्वामी दयानन्द ने इस देश को आर्यावर्त्त तथा निवासियों को 'आर्य' नाम से सम्बोधित करने पर जोर दिया। उन्होंने कहा - ''हमारे देश का नाम आर्य स्थान अथवा आर्यखण्ड होना चाहिए, सो उसे छोड न जाने हिन्दुस्थान यह नाम कहां से निकला? भाई श्रोतागण, हिन्दू शब्द का अर्थ तो काला, काफिर, चोर इत्यादि है और हिन्दुस्थान कहने से काले, काफिर, चोर लोगों की जगह अथवा देश, ऐसा अर्थ होता है। तो भाई, इस प्रकार का बुरा नाम क्यों ग्रहण करते हो? और आर्य अर्थात् श्रेष्ठ अथवा अभिज्ञात इत्यादि और आर्यावर्त्त कहने से ऐसों का देश अर्थात् आर्यावर्त्त का अर्थ श्रेष्ठों का देश होता है, सो भाई, ऐसे श्रेष्ठ नाम को तुम क्यों स्वीकार नहीं करते? क्या तुम अपना मूल का नाम भी भूल गये? - सज्जन गण, अब हिन्दू इस नाम का त्याग करो और आर्य तथा आर्यवर्त्त इन नामों का अभिमान धरो। ''गुणभ्रष्ट हम लोग हुये, परन्तु नाम भ्रष्ट तो हमें न होना चाहिये।'' स्वामीजी की उपर्युक्त मार्मिक शब्दावली का अर्थ हृदयगम कर पाठक यह सहज ही अनुमान कर लेंगे कि उन्होंने 'आर्य' और 'आर्यावर्त्त' के प्रयोग पर क्यों बल दिया था?

स्वामी विवेकानन्द ने भी अपने एक व्याख्यान में यह स्पष्ट कर दिया था कि 'हिन्दू' शब्द की कोई विशेष अर्थवत्ता न होने के कारण वर्तमान संदर्भ में उसकी सार्थकता नहीं है। उनके शब्द हैं- ''जिस हिन्दू नाम से परिचित होना अब हमारी चाल हो गई है, इस समय उसकी कोई भी सार्थकता नहीं है।'' परन्तु वे इस शब्द कें बहिष्कार के पक्षपाती नहीं थे। उनकी यह धारणा थी कि शताब्दियों से प्रचलित 'हिन्दू' शब्द को केवल इसीलिये त्याग देना अनुचित है कि उसके अर्थ किसी फारसी भाषा के कोष में काला, काफिर, चोर आदि लिखे है। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा - '' मैं हिन्दू शब्द का किसी बुरे अर्थ में प्रयोग नहीं कर रहा हूं और मैं उन लोगों से कदापि सहमत नहीं जो उससे कोई बुरा अर्थ समझते है। यह तो हमारे ऊपर ही पूर्णतया निर्भर है कि हिन्दू नाम अखिल महिमामय तथा आध्यात्मिक विषयों का द्योतक रहे या कि उस शब्द का चिरकाल तक घृणासूचक प्रयोग हो तथा उस शब्द से पद दलित, निकम्मी और धर्मभ्रष्ट जाति का बोध हो। यदि आज 'हिन्दू' शब्द का कोई बुरा अर्थ है, तो उसकी परवाह मत करो।'' निश्चय है कि दयानन्द की भांति विवेकानन्द 'हिन्दू' शब्द के प्रयोग करने के विरोधी नहीं है। स्वामी दयानन्द के मत का औचित्य इसी बात से प्रकट है कि वस्तुत: सम्पूर्ण प्राचीन भारतीय वाङ्मय में आर्य शब्द का प्रयोग मिलता है तथा इसी नाम का व्युत्पत्तिजन्य अर्थ भारतीय जाति के उत्कर्ष, प्रभाव तथा महत्ता का समग्रत: द्योतन कर सकता है। मध्यकाल में अन्य जातियों द्वारा दिये गये नाम को हम किसी न किसी रूप में अपने साथ जोडे रखें, इसमें कोई युक्ति नहीं है। यदि विदेशियों की दासता का परित्याग कर सकते हैं तो उनके द्वारा प्रदत्त नाम क्यों नहीं त्याग सकते?

❀❀❀

www.thearyasamaj.org

सन्ध्या योग

यह बात सर्वविदित है कि योग के आठ अङ्ग हैं – १. यम, २. नियम, ३. आसन, ४. प्राणायाम, ५. प्रत्याहार, ६. धारणा, ७. ध्यान, ८. समाधि।

यदि हम योग के अष्टांङ्गों को सन्ध्या में देखना चाहें तो वह अति स्पष्ट है, पिता के द्वारा बालक को आचार्य कुल में प्रवेश कराने के उपरान्त जहाँ आचार्य पालित और पूरित करता हुआ पिता के दायित्व को पूर्ण करता है वहाँ आचार्य पत्नी बालक के चरित्र की निर्मात्री बन माता शब्द को सार्थक करती है। वह यजुर्वेद की ऋचा शब्दावली में कहती है, प्रिय पुत्र घबराओ नहीं, मैं तुम्हें और तुम्हारे अङ्ग को धोकर शुद्ध करूँगी।

वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रं ते शुन्धामि नाभिं ते शुन्धामि मेढ्रं ते शुन्धामि पायुस्ते शुन्धामि चरित्रांस्ते शुन्धामि ।। यजुर्वेद ६।१४

आचार्य पत्नी का यह कथन बटुक को विश्वास दिला देता है – यही मेरी माता है, यही मेरी निर्मात्री है, यही मेरी प्रमात्री है, बालक स्वयम् अब इस योग्य हो गया है कि वह अपने अङ्गों की शुद्धि स्वयं करने लगा है। योग के अष्टाङ्गों में द्वितीय अङ्ग नियम का समावेश हो गया है। न केवल नियम अंङ्ग का अपितु गहन विचार करने पर यम, आसन, प्राणायाम एवं प्रत्याहार तक के अङ्गों का समावेश माना जा सकता है। ''**वाचं ते शुन्धामि**'' का अर्थ मात्र यह न समझ लेना चाहिए कि उसकी जिह्वा पर आये हुए मैल को ही दूर करेगी, अपितु उसके वर्णोच्चारण में होने वाली अशुद्धियों को ही दूर करेगी अपितु उसके वक्तव्य में वाक् सम्बन्धी कोई दोष होगा तो उसे दूर करेगी, ''**प्राणं ते शुन्धामि**'' इसका अभिप्राय कदापि यह न समझ लिया जाय कि नासिका छिद्रों में आये हुए मलों को ही दूर करना नहीं है अपितु प्राणायाम द्वारा उसकी प्राणशक्ति को बढाना भी है। ''**चक्षुस्ते शुन्धामि**'' का अभिप्राय कदापि यह न समझ लिया जाय कि आँखो पर आई हुई मैल को ही दूर करना अभिप्रेत है अपितु आँखो द्वारा परनारी को मातृवत् देखना, परधन को मिट्टी के ढ़ेले के समान देखना, समस्त प्राणियों में अपने आत्मा को देखना, न केवल देखना ही अपितु बर्ताव भी करना।'

''**श्रोत्रं ते शुन्धामि**'' का अभिप्राय कदापि वह न समझ लिया जाय, उसके कानों में आये हुए मैल को दूर करना है। वह तो है ही उसके साथ-साथ बालक को सिखाना वह भद्र ही सुने अभद्र नहीं।

''**नाभिं ते शुन्धामि**'' का अर्थ भी केवल उसके मैल को हटाना ही अभिप्रेत नहीं, अपितु पाचन शक्ति को शुद्ध रखना जिससे बालक की वीर्य-रक्षा स्वत: सिद्ध हो, बुद्धि सात्त्विक बने।

तभी जाकर अगले तीन अङ्गों की शुद्धता सम्भव हो पायेगी।

मेढ्रं ते शुन्धामि पायुस्ते शुन्धामि चरित्रांस्ते शुन्धामि।

नियमों के अन्तर्गत आये हुए प्रथम आचरण शौच की सिद्धि ही साधक को योग-मार्ग पर चलने को उत्साहित करती है।

मनु का यह वचन सार्थक होता दिखाई देता है।

अद्भिः गात्राणि शुद्‌ध्यन्ति, मन: सत्येन शुद्‌ध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्‌ध्यति ।।

आचार्य पत्नी बालक को शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि इन्द्रिय आहारों को मर्यादित कर प्रत्याहार अङ्ग की साधना कराती है। अय वत्स ! बाहर ही न देखो अन्दर भी देखो, बाहर ही सांस न लो, अन्दर भी लो। बाहर वालों से ही बात न करो, अन्दर वालों से भी बात करो, बाहर वालों की न सुनो अपितु अन्दर वालो की भी सुनो। यह ही है प्रत्याहारसिद्धि।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिन:।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।

इस श्लोक के ऊपर की पंक्ति में आये हुए निराहारस्य पद के स्थान पर प्रत्याहारस्य कर लिया जाय तो कोई अनुचित न होगा, अपितु योग के प्रत्याहार अङ्ग का स्पष्टीकरण हो जायेगा। अब बटुक इस योग्य हो गया है कि वह चरित्र योग के इन अङ्गों को समझने लगा है। दैनिक सन्ध्या में आचमनोपरान्त हथेली पर जल लेकर ओ३म् वाक्-वाक्, ओ३म् प्राण: प्राण: इत्यादि मन्त्र से अङ्ग-स्पर्श करने लगा है। साथ ही मार्जन मन्त्र के माध्यम से अपने शिर आदि इन्द्रिय पात्रों में परब्रह्म की भू:, भुव:,स्व:,मह:, जन:, तप:, सत्यम् आदि अमृतधाराओं को छानने लगा है। तत्पश्चात इन्हीं व्याहृतियों द्वारा प्राणायाम की सिद्धि कर रहा है। उधर अग्निहोत्र के माध्यम से अपने दोनों हाथों को अग्नि पर तपाकर ''**वाक् च म आप्ययताम्। प्राणश्च म आप्यायताम्। चक्षुश्च म आप्यायताम्। श्रोत्रन्च म आप्यायताम्। यशोबलत्र्च म आप्यायताम् ।।**''

मनुष्य जीवन का उद्देश्य मोक्ष-प्राप्ति है, मोक्ष शब्द जिस धातु से बना है उसका अर्थ है छुटकारा। जब तक छुटकारा न होगा तब तक

www.thearyasamaj.org

ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होगी, मोक्ष अथवा मुक्ति शब्द इस बात के द्योतक है कि साधक किन्हीं बन्धनों में बंधा हुआ है और वह तडप रहा है कि कब और कैसे इन बन्धनों से छुटू । अब प्रश्न उपस्थित होता है वे बन्धन क्या है और कितने है? जीवात्मा के तीन बन्धन है – आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक।

वेद की ऋचा में कहा गया है – **'त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति।'** इन त्रिधा बन्धनों को उत्तम, मध्यम, अधम पाश कहा गया है । प्रसिद्ध मन्त्र है –

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ।।

उत्तम पाश का केन्द्र मस्तिष्क, मध्यम पाश का केन्द्र हृदय है, अधम पाश का केन्द्र नाभि है । इन्हे हम क्रमशः आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक बन्धन कहेंगे । प्रत्येक प्राणी मस्तिष्क में मन के द्वारा बंधा है जिसे हम सात्त्विक बन्धन भी कह सकते हैं । आधिदैविक बन्धन का केन्द्र हृदय है जिसे हम राजसिक बन्धन भी कह सकते हैं, आधिभौतिक का केन्द्र नाभि अथवा उदर है जिसे आधिभौतिक तामसिक बन्धन भी कह सकते हैं । कोई भी बन्धनकर्ता चाहे वह ब्रह्मा हो, चाहे माता–पिता, आचार्य हो इन्हीं तीनों केन्द्रों पर अपने पाश डालकर बांधते हैं । आचार्य का वरुण रूप तब प्रकट होता है कि जब अन्तेवासी को इन तीन केन्द्रो से बांधकर तीन रसों से आप्यायित कर उसे तृप्त कर देता है, उसे आप जो भी संज्ञाएँ देना चाहे दे सकते हैं । जैसे कि ऋक्, यजु, साम,त्रिधा रस, भूः भुवः स्वः महाव्याहृति रस अथवा गायत्री माता के द्वारा धी, वरेण्यम् और भर्ग त्रिधा रस तीन प्रकार के रस अ, उ, म् तीन अक्षरों का रस इन तीन प्रकार के रसों से आप्यायित होते ही साधक रूप फल परिपक्व हो जायेगा । और परिपक्व होते ही फल बन्धन से मुक्त हो जायेगा । फल का रस से आप्लावित होना ही समाधि योग है ।

दर्शनकार ने कहा भी है **''समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरुपता''** ब्रह्मरुपता प्राप्त मुक्तजीव बद्ध जीवों को कहेंगे ।

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवा अमृतमानशाना स्तृतीये धामन्तध्यैरयन्त ।। यजु. ३२।१०

उपर्युक्त विवेचन से एक बात स्पष्ट है कि फल के परिपक्व होने के लिए बन्धन आवश्यक है, बिना बंधे पकेगा नहीं और बिना पके छूटेगा नहीं । अतः उस बन्धन को मर्यादित करने के लिए शास्त्रकारों ने त्रिविध योगों का वर्णन किया है, ''ज्ञानयोग, कर्मयोग और उपासनायोग'' ऊपर के बन्धन को मस्तिष्क के सात्त्विक बन्धन को खोलने के लिए ज्ञानियों की आवश्यकता है, नीचे के अन्नमय तामसिक बन्धन को खोलने के लिए कर्मयोग की आवश्यकता है । मध्यम बन्धन हृदय का बन्धन है जो कि राजसिक है, उसे खोलने के लिए उपासना योग की आवश्यकता है । अतः योग के आचार्यों ने योग की तीन परिभाषाएँ दी है । ज्ञानयोग को अभिलक्ष्य कर कहा गया है,''योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।'' कर्म योग को अभिलक्ष्य रखकर कहा गया है ''योगःकर्मसु कौशलम्।'' उपासना योग को अभिलक्ष्य रखकर कहा गया है,''समत्वं योग उच्यते ।'' इन्हीं तीनों का विस्तार योग के ग्रन्थों में पाया जाता है, अगर इन तीनों योगों को समन्वित करके योग की परिभाषा की जाय तो उसे हम चरित्र योग कहेंगे । हम अपने इस प्राक्कथन लेख के आरम्भ में ही यजुर्वेद के छः अध्याय के १४ मन्त्रों के आधार पर आचार्य पत्नी द्वारा नव प्रवेशार्थी बटुक के प्रति ''चरित्रांसो शुन्धामि'' विद्वद्वर्य स्वर्गीय आचार्य रामप्रसाद जी ने अपनी इस ग्रन्थमाला को व्यवहार योग नाम दिया है ।

विदुषां वंशवदः
विद्यामार्तण्ड स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती
समर्पण शोध – संस्थान
४/४२, सेक्टर ५, राजेन्द्रनगर,
साहिबाबाद, जि. गाजियाबाद (उत्तरप्रदेश)
५।४।२००२

❀❀❀

Glorious India of 1835

"I have travelled across the length and breadth of India and I have not seen one person who is a beggar who is a thief. Such wealth I have seen in this country, such high moral values, people of such caliber, that I do not think we would ever conquer this country, unless we break the very backbone of this nation, which is her spiritual and cultural heritage, and therefore, I propose that we replace her old and ancient education system, her culture, for if the Indians think that all that is foreign and English is good and greater than their own, they will loose their self-esteem, their native self culture and they will become what we want them, a truly dominated nation."

(Text of a speech given by Lord Macaulay in the House of Commons, British Parliament on February 1835)

www.thearyasamaj.org

-: ओ३म् :-

मेरे आचार्य महायात्रा पर

आचार्य प्रदीप कुमार शास्त्री,
महर्षि पाणिनि आर्ष गुरुकुल,
कुटिया, नलवीकुर्द, पो. कुब्जपुरा,
करनाल (हरियाणा) १३२०२२

उधर आकाशस्थ प्रकाश – चन्द्र ने अपनी एक जीवनयात्रा को (कृष्णपक्ष अमावास्या तक) पूर्ण कर दूसरी नवीन जीवनयात्रा का आरम्भ (शुक्लपक्ष प्रतिपदा को) किया तो उसके साथ प्रतिस्पर्धा करते हुए इधर भी एक ज्ञान – चन्द्र (पूज्य गुरुवर आचार्य विजयपाल जी विद्यावारिधि) भी अपनी वर्तमान जीवनयात्रा को (श्रावण कृष्णपक्ष की अमावस्या की रात्रि व्यतीत होने पर) पूर्ण कर प्रात: नवीन सूर्योदय के साथ (श्रावण शुक्ल प्रतिपदा को पांच बजकर पचास मिनट पर) अग्रिम नूतन जीवनयात्रा के लिए निकल पडे ।

दोनों चन्द्रों में अनेक समानताएं देखीं । जैसे उस चन्द्र को सौम्य गुणों के कारण सोम कहा जाता है वैसे ही आप भी सौम्य गुणों के आकार थे । तथा जैसे आकाशस्थ चन्द्र सूर्य से प्राप्त स्वगत प्रकाश के न्यूनातिन्यून एक-एक कण रहने तक भी परोपकारार्थ पृथिवी के अन्धकार को दूर करने का सतत प्रयास करता रहता है उसी प्रकार यह पृथिवीस्थ चन्द्र (आचार्य जी) भी सद्गुरूओं से प्राप्त श्रेष्ठ वैदिक ज्ञान के द्वारा यावज्जीवन सामर्थ्य से भी बढकर निज (शरीरगत) तथा आगन्तु (बाह्यनिमित्तक) भयङ्कर से भयङ्कर आधि/व्याधि/बाधाओं को सहर्ष सहन करते हुए अज्ञानान्धकार को मिटाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहे ।

इसी प्रकार जैसे निशपति चन्द्र रात्रिभर अन्धकार को मिटाने का कार्य पूर्ण प्रयत्न से करते हुए प्रात: उस कार्य को निशापुत्र सहस्त्ररष्मि आदित्य को सौंप देता है उसी प्रकार इस विद्यापति चन्द्र (आचार्यश्री) ने भी निष्ठापूर्वक अपने दायित्व को निभाते हुए अपने विद्यापुत्रों को आदेश दिया कि ''लो भई, अपना काम तो पुरा हुआ, अब तुम सम्भालो।''

चन्द्र के प्रत्येक जीवन में पूर्णिमा के बाद अमावास्या तथा अमावास्या के बाद पुन: पूर्णिमा का चक्र निरन्तर चलता रहता है । अर्थात् उसे प्रत्येक पूर्णिमा के बाद अमावास्या का भी सामना अवश्य ही करना पडता है । सम्भवत: महाराज श्री कृष्ण जी ने गीता के अन्दर (२.२७) इसी तथ्य की ओर संकेत किया है – **'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च'**

वैसे आचार्यश्री का यह भ्रमणकाल है । क्योंकि आचार्यश्री प्राय: प्रात: पांच बजे उठकर शौचादि से निवृत्त होकर पौने छे बजे के आसपास भ्रमण के लिए निकल जाते थे । अन्तर केवल इतना है कि पहले आप लगभग एक घण्टे में वापिस आते थे , लेकिन इस बार कुछ लम्बे समय के लिए चले गये है ।

इस यात्रा की चर्चा आचार्यश्री प्राय: मुझसे करते थे । जब कभी हम आचार्यश्री से मनोरंजन के लिए किसी दूसरे स्थान पर यात्रा (पिकनिक) हेतु कहते थे तो आप प्राय: प्रसन्नमुद्रा में कहा करते थे कि अब किसी सांसारिक यात्रा की इच्छा नहीं है, अब तो केवल महाराज श्रीकृष्ण के द्वारा निर्दिष्ट स्थान **'यद् गत्वा न निवर्त्तन्ते तद् धाम परमं मम ।'** की यात्रा की इच्छा है ।

आचार्यश्री कभी-कभी बातों ही बातों में कहा करते थे कि अब मुझे मृत्यु से भय नहीं लगता । जबकि पहले (लगभग पचास वर्ष की अवस्था में) जब मेरा उच्च रक्तचाप का रोग आरम्भ हुआ तो एक बार मेरे शरीर में अचानक ही भयङ्कर रूप से झनझनाहट एवं चीटियां सी चलने लगीं तो पण्डित जी (श्री युधिष्ठिर जी मीमांसक) एवं माता जी (पण्डित जी की धर्मपत्नी) तथा मन्त्री जी (श्री जीवनराम जी) आदि सभी बहुत घबरा गये कि आचार्य जी को यह क्या हो गया? यह तो लकवे का लक्षण है । यह सब सुनकर मेरे मन में भी एक भय सा होने लगा कि यदि मैं अभी मर गया तो लोग क्या कहेंगे कि ब्रह्मचारी होकर भी इतनी जल्दी मर गया!! नहीं मैं अभी नहीं मरना चाहता । मुझे कम से कम सत्तर -अस्सी वर्ष तक तो जीना ही है । लेकिन अब सत्तर पार करने के बाद भय नहीं लगता, अब मृत्यु जब चाहे तब ले जाये हमेशा तैयार रहता हूँ ।

www.thearyasamaj.org

एक बार मैनें पूछा कि आचार्य जी! क्या आपको मुक्ति की इच्छा नहीं है? आचार्य श्री बोले- नहीं, अभी नहीं, अभी तो मेरी मरने की भी इच्छा नहीं है । पहले मैं सोचता था, बहुत हो गया, अब चलना चाहिए, लेकिन जब से विज्ञान के नित्य नये-नये आविष्कार सामने आने लगे है तो उन्हें देखकर अभी जाने की इच्छा नहीं है । और यदि मृत्यु ले भी गया तो अभी तो पुन: आने की इच्छा है, विज्ञान के इन आविष्कारों को देखने के लिए । देखो ने, मनुष्य चन्द्रमा पर पहुँच गया, मङ्गल पर पहुँच गया, अन्तरिक्ष की यात्राएं कर रहा है ।

जिस प्रकार त्रेतायुग के बाल ब्रह्मचारी पितामह भीष्म ने सम्पूर्ण जीवन को परोपकारार्थ व्यतीत करते हुए जीवन के अन्तिम काल में शरशय्या पर लेटे - लेटे मृत्यु के लिए उपयुक्त समय की प्रतीक्षा की थी उसी प्रकार इस युग के हमारे बाल ब्रह्मचारी आचार्यश्री ने भी अन्त मृत्यु के लिए सुयोग की प्रतीक्षा की । कैसे ? तो देखते हैं । श्रावण मास - सुनने -सुनाने का मास, वेदपाठियों का मास, सांसारिक गतिविधियों से निवृत्ति का प्रतीक चातुर्मास्य काल । भला, जिस व्यक्ति ने आजीवन वेदादि सत्य शासत्रों के सुनने-सुनाने, पढने-पढाने का कार्य किया, तथा ना ही कभी किसी सांसारिक गतिविधि में रुचि रखी, वह अन्य किसी मास में कैसे जा सकता है ?

श्रावण भास का भी शुक्लपक्ष ! अर्थात् अन्धकार से प्रकाश की ओर बढने का समय ! ऐसा समय जिसमें प्रकाश की ही उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही हो । 'तमसो मा ज्यातिर्गमय' वाक्य की सम्पूर्ण चरितार्थता । जिस व्यक्ति ने सम्पूर्ण जीवन अनेक जीवनों को अज्ञानान्धकार से निकाल कर ज्ञान-प्रकाश से आलोकित किया, वह स्वयं कृष्णपक्ष में क्योंकर गति कर सकता है, जिसमें कि उत्तरोत्तर अन्धकार ही अन्धकार बढता रहता है?

शुक्लपक्ष की भी प्रतिपदा या प्रतिपत् तिथि । इन दोनों शब्दों को हम दो प्रकार से समझ सकते हैं । एक तो **'प्रतिपद्यत उपक्रम्यत आरभ्यतेऽनयेति प्रतिपत्'** अथवा **'प्रतिपदनं प्रतिपत्'** । प्रथम के अनुसार जहाँ से एक गतिविशेष का आरम्भ होता है, उसे प्रतिपत कहते है तो द्वितीय के अनुसार बुद्धि या ज्ञान को प्रतिपत् कहते हैं । तो यहाँ भी तो ज्ञानपूर्वक एक ज्ञानप्रधान, प्रकाशप्रधान जीवन की प्राप्ति के लिए विशेष गति का आरम्भ किया गया है । इसका संकेत भी आचार्यश्री ने हमें दिया था -

जब गतवर्ष (१५ फरवरी , सन २०१२ को) मन्त्री जी (श्री जीवनराम जी) का बनारस में रात्रि में देहावसान हो गया तो उससे अगले दिन मैं और स्वामी सम्पूर्णनन्द जी सरस्वती आचार्य श्री से मिलने के लिए गये । कुशल क्षेम पुछने के पश्चात् आचार्य श्री ने स्वयं अत्यन्त उत्साह के साथ कहना आरम्भ किया कि- ''मन्त्री जी तो चले गये लेकिन मैं अभी जाने वाला नहीं हूँ । मृत्यु मुझे बार बार लेने के लिए आती है, लेकिन मैं उसे कक्ष के द्वार से बाहर ही रोक देता हूँ । उससे कहता हूँ कि खबरदार ! यदि अन्दर आयी तो !! मैं तेरी इच्छा से जाने वाला नहीं हूँ, अपनी इच्छा से जाऊँगा । जब मैंने पूरा जीवन अपनी इच्छा से जिया है तो भला अब अन्त में तेरी इच्छा कैसे मानूँ? अपनी इच्छा सेही जाऊँगा । और अभी जाने के लिए न समय है और ना ही मेरी इच्छा है ।''

एक बार मैंने पूछा कि आचार्य जी! आपने, पण्डित जी (श्री युधिष्ठीर जी मीमांसक) ने तथा गुरु जी (गुरुवर ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु) ने अपना सारा जीवन ऐसे ही वेदादि शास्त्रों के पढ़ने-पढ़ाने तथा लिखने-लिखाने में निकाल दिया, न तो कोई सांसारिक सुख देखा, ना ही शरीर को स्वस्थ रख सके, बस सूसे ईंधन की तरह जीवन भर जलते रहे । अन्तत: आप लोगों के जीवन की उपलब्धि क्या है, जिसको कि कहा जा सके कि हमने जीवन में यह पाया? आचार्य श्री बडे ही प्रसन्न, गम्भीर एवं उत्साह में बोले - आत्मसंतोष, आत्मसन्तुष्टि । यह सब कार्य करने से हम सभी ने एक अपूर्व सन्तोष का अनुभव किया है । यह सन्तोष ही हमारे जीवन की उपलब्धि है । मैं आचार्य श्री का उत्तर समझ चुका था । इसी को तो योगदर्शन के ऋषि ने कहा है - **'सन्तोषादनुत्तम: सुखलाभ:'** भला और क्या चाहिए ? क्या इससे भी बढकर जीवन की कोई उबलब्धि हो सकती है?

इसी प्रकार की अनेक स्मृतियां सदैव आदेश/निर्देश/सन्देश/ उपदेश बनकर स्मृतिपटल पर उभरती रहती हैं । नित्य सत्प्रेरणाएं देती रहती है । वस्तुत: गुरुवर लोकोत्तरचेता थे । उनके सदृश महाचेता को समझना मेरे जैसे क्षुद्र के सामर्थ्य से बाहर है । क्योंकि -**'वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि । लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति।।'**

❀❀❀

www.thearyasamaj.org

देखो, वरुण प्रभु का चमत्कार

ऋषिः वत्सः । देवता वरुणः । छन्दः विराड् आर्षी त्रिष्टुप् ।

वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पयऽउस्त्रयासु ।
हृत्सु क्रतुं वरुणो विक्ष्वग्निं दिवि सूर्यमदधात् सोममद्रौ ।।
– यजु. ४/३१

(वरुणः) वरुण प्रभु ने **(वनेषु)** वन–वृक्षों के ऊपर **(अन्तरिक्षम्)** अन्तरिक्ष को **(अर्वत्सु)** घोडों में **(वाजं)** बल और वेग को, और **(अस्त्रियासु)** गायों में **(पयः)** दूध को **(वि ततान)** विस्तीर्ण किया है । उसी ने **(हृत्सु)** हृदयों में **(क्रतुं)** कर्म को, **(विक्षु)** प्रजाओं में **(अग्निं)** अग्नि को, **(दिवि)** द्युलोक में **(सूर्य)** सूर्य को, और **(अद्रौ)**पर्वत पर **(सोमं)** सोमादि ओषधियों को, **(अदधात्)** धरा है ।

वरुण प्रभु की कारीगरी के चमत्कार जड जगत् और चेतन जगत् सर्वत्र आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले हैं । दूर से जङ्गलों की ओर निहारो, तो ऐसा लगता है कि हरे पत्तों, रङ्ग–बिरङ्गे पुष्पों और फलों से सजाये हुए वृक्षरूप खम्भों पर हल्के नीले गगन का शामियाना तना हुआ है । यह शामियाना किसने ताना है? वरुण प्रभु की ही यह लीला है । और देखो, आग के जलते हुए गोले रूप सूर्य को बिना डोर के द्युलोक में किसने लटकाया है? यही सूर्य है, जो हमारी पृथिवी को और मंगल, बुध आदि अन्य ग्रहों तथा उपग्रहों को प्रकाश, ताप एवं प्राण प्रदान कर रहा है तथा सबको अपनी – अपनी कक्षा में स्थित रख कर अपनी परिक्रमा करवा रहा है, मानो पिता अङ्गुलि पकड कर बच्चों को अपने चारों ओर घुमा रहा है । और भी देखो, पर्वतों पर अनेक प्रकार की सोम आदि औषधियों को उत्पन्न करनेवाला कौन है? ये औषधियाँ अनेक गुण–धर्मो को अपने अन्दर रखनेवाली हैं तथा सोम इन ओषधियों का राजा है । इस सोम ओषधि का आकाशीय सोम चन्द्रमा के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा इसकी घटती–बढती चन्द्रकलाओं की घटती–बढती के अनुसार होती है । इस सोम ओषधि के अनेक भेद होते हैं, जिनके रस में अद्वितीय वीरता, मेधा आदि पैदा करने की अपूर्व क्षमता है । यह चमत्कार भी वरुणदेव का ही किया हुआ है ।

यह सब तो जड जगत् में दीखनेवाली हस्तकला का नमूना है । अब चेतन जगत् की ओर भी दृष्टि डालो । पशुओं में घोडे बल और वेग के प्रतीक माने जाते है तथ किसी यन्त्र की बल की इकाइयाँ मापने के लिए यह कहा जाता है कि इसमें इतने घोडों के बल के बराबर शक्ति है । सरपट, दुलक्की आदि विभिन्न चालों से चलते हुए, बोझे से भरे शकट को खींचते हुए तथा युद्ध में अनुपम वीरता दिखाते हुए घोडे किसके मन को मुग्ध नहीं कर लेते? घोडों में यह अद्भुत बल और वेग किसने भरा है? वरुण प्रभु की ही यह करामात है । और, तरह–तरह की जातिवाली, माता कही जानेवाली गायों के पयोधरों में अमृतोपम दूध कौन भरता है? यह भी वरुण देव की ही कारीगरी है । प्राणियों के हृदयों की ओर भी दृष्टिपात करो । ये हृदय शरीर के सारे अशुद्ध रक्त को शिराओं द्वारा खींच कर उसे शुद्ध करने के लिए फेफडों में भेजते है तथा उस शुद्ध हुए रक्त को संगृहीत करके फिर धमनियों द्वारा सारे शरीर में पहुँचाते हैं । शरीर में हृदय के इस अद्भुत कर्म को करनेवाला कौन है ? यह भी वरुण प्रभु की ही देन है । विभिन्न राष्ट्रों की प्रजाओं को भी देखो । इनके अन्दर धधकती हुई राष्ट्रप्रेम, दृढ प्रतिज्ञा, वीरता, बलिदान–भावना आदि की अग्नि को कौन जगाता है? वरुणदेव ही प्रजाओं में इन विभिन्न अग्नियों को प्रज्वलित करते हैं । 'वरुण' राजाधिराज परमेश्वर का ही एक नाम है । आओ, वरुण के इन चमत्कारपूर्ण उपकारों के प्रति हम अपनी कृतज्ञता दर्शाते हुए उसके प्रति नतमस्तक हों ।

❀❀❀

सन १८३५ का दैदीप्यमान भारत

मैंने भारत की चतुर्दिक यात्रा की है और मुझे इस देश में एक भी याचक अथवा चोर नहीं दिखा । मैंने इस देश में सांस्कृतिक संपदा से युक्त, उच्च नैतिक मूल्यों तथा असीम क्षमता वाले व्यक्तियों के दर्शन किए है । मेरी दृष्टि में आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक विरासत जो कि इस देश का मेरूदंड रीढ़ है, उसको खंडित किए बिना हम इस देश पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते हैं । मैं प्रस्ताव करता हूँ कि इस देश की प्राचीन शिक्षण पद्धति उनकी संस्कृति को इस प्रकार परिवर्तित कर दें कि परिणाम स्वरूप भारतीय यह सोचने लगें कि जो कुछ भी विदेशी एवं आंग्ल है वही श्रेष्ठ एवं महान है इस तरह वे अपना आत्म सन्मान, आत्म गौरव तथा उनकी अपनी मूल संस्कृति को खो देंगें और वे वही बन जाएंगे जो कि हम चाहते हैं– पूर्ण रूप से हमारे नेतृत्व के अधीन एक देश ।

(लॉर्ड मैकाले द्वारा २ फरवरी १८३५ को हाऊस ऑफ कॉमन्स ब्रिटिश संसद में दिए गए भाषण का अंश)

(उपरोक्त ऐतिहासिक दस्तावेज की प्रतिलिपि सुप्रीम कोर्ट के जज द्वारा परमपूज्य जैन मुनि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज को उपलब्ध कराई गई।)

www.thearyasamaj.org

महापुरुष के लक्षण

स्वदुर्गुणश्रवणतो यस्तुष्यति न क्रुध्यति ।
स्वोपहासप्रविज्ञाने यतते त्यजति श्रुति: ।।३०१।।
स्वगुणश्रवणान्नित्यं समस्तिष्ठति नाधिक: ।
दुर्गुणानां खनिरहं गुणाधानं कथं मयि ।।३०२।।
मय्येव चाज्ञताऽप्यस्ति मन्यते सोऽधिकोऽखिलात् ।
स साधुस्तस्य देवा हि कलालेशं लभन्तिन ।।३०३।।

अर्थात् – जो मनुष्य अपने दुर्गुणों को सुनकर प्रसन्न होता है और क्रुद्ध नहीं होता, अपने उपहासकर दोषों को जानने के लिए विशेष रूप से प्रयत्न करता है, दुर्गुणों को सुनकर उन्हें छोड देता है, अपने गुणों को सुनकर नित्य समभाव में रहता है, फूलकर कुप्पा नहीं हो जाता, मैं तो दुर्गुणों की खान हूँ और मुझे में गुण कहाँ ! मुझमें ही सबसे अधिक मूर्खता है – जो ऐसा समझता है वह सारे संसार के लोगों में सर्वश्रेष्ठ है, वह साधु पुरुष कहलाता है । देवता भी ऐसे मनुष्य की कला के एक अंश को भी प्राप्त नहीं कर सकते ।

सम्पत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम् ।
आपत्सु च महाशैलशिलासङ्घातकर्कशम् ।।

(भर्तृ. नीति ५५)

महापुरुषों का चित्त समृद्धि में कमल के समान कोमल हो जाता है और विपत्ति पडने पर बडे पर्वत की चट्टानों के समूह के समान अत्यन्त कठोर हो जाता है ।

वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति ।।

भद्रपुरुषों का हृदय दिव्यता से परिपूर्ण (लोकोत्तर) होता है । उनके मन की थाह कौन पा सकता है । दूसरों की रक्षा में वज्र से भी कठोर और दुखियारों के लिए फूल से भी कोमल होते है ।

महात्मा

अहो किमपि चित्राणि चरित्राणि महात्मनाम् ।
लक्ष्मीं तृणाय मन्यन्ते तद्भारेण नमन्त्यपि ।।

अहो ! महात्माओं के चरित्र भी बडे अद्भुत होते हैं । लक्ष्मी को वे तिनके के समान तुच्छ समझते हैं, और लक्ष्मी प्राप्त होने पर उसके बोझ से नम्र भी हो जाते हैं । (उन्हें धन का अभिमान नहीं होता)

उदये सविता रक्त: रक्तश्चास्तमये तथा ।
सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता ।।

उदय होता हुआ भी सूर्य रक्तिम (लाल) होता है और अस्त होते समय भी । इसी तरह बुद्धिमान सज्जन भी विपत्ति और संपत्ति में एक-समान रहते हैं । सुख-दु:ख में उनमे कोई विकार नहीं आता ।

सज्जन स्वभाव

धनिनोऽपि निरुन्मादा, युवानोपि न चन्चला: ।
प्रभवोप्यप्रमत्तास्ते, महामहिमशालिन: ।।

जो धनवान होने पर उन्मादी नहीं होते, युवा होते हुए भी चन्चल नहीं होते, प्रभावशाली होते हुए भी अप्रमत्त नहीं होते, वे ही महामहिमाशाली कहलाते हैं ।

साधुजनबहुलो देश: । (चा. सूत्र ३७०)

जहाँ अधिक सज्जन पुरुष रहते हों, वही उत्तम देश होता है ।

तिलमात्रमप्युपकारं शैलवत्तं मन्यते साधु: ।

(चा. सूत्र ३९८)

सज्जन पुरुष तिल-तुल्य उपकार को भी पहाड जैसा महान मानते हैं ।

स्वशरीरमपि परशरीरं मन्यते साधु: ।

(चा. सूत्र ५६२)

साधु पुरुष अपने शरीर को भी पराया समझते है ।

य: परार्थमुपसर्पति स सत्पुरुष: ।

(चा. सूत्र २९९)

जो मनुष्य परोपकार के लिए आगे बढता है, वही सत्पुरुष कहलाता है ।

शैले शैले न माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे गजे ।
साधवो नहि सर्वत्र, चन्दनं न वने वने ।।

www.thearyasamaj.org

प्रत्येक पर्वत पर माणिक्य नहीं मिलते, प्रत्येक हाथी के मस्तक पर मोती नहीं होते, प्रत्येक वन में चन्दन नहीं होता, इसी प्रकार सज्जन भी सर्वत्र नहीं मिलते।

गतिरात्मवतां सन्त:, सन्त एव तसां गति: ।
असतां च गति: सन्तो नत्वसन्त: सतां गति: ।।

(विदुरनीति २ अ. ४७)

सन्तजन प्राणिमात्र को आश्रय देनेवाले हैं, सन्तों को आश्रय देनेवाले भी सन्त हैं, दुष्टों को सहारा देनेवाले भी सन्त है, परन्तु दुष्ट लोग सन्तों को कभी सहारा नहीं देते।

वदन प्रसादसदनं सदयं हृदयं सुधामुचो वाच: ।
करणं परोपकरणं येषां केषां न ते वन्द्या: ।।

जिनका शरीर प्रसन्नता का घर है, हृदय दयावान् है, वाणी अमृत के समान है और परोपकार जिनका कर्तव्यकर्म है, ऐसे सज्जन किसके वन्दनीय नहीं होते!

कुसंग का फल

किसी हिन्दी के कवि ने कुसङ्ग के विषय में एक कवित्त कहा है–

लोहे की कुसङ्गत से पावक पर मार पडे,
खट्टे की कुसङ्गत से दूध फट जात है ।
बाँस की कुसङ्गत से जल जात लाखों वृक्ष,
कीच की कुसङ्गत से कूप अट जात है ।
दुष्ट की कुसङ्गत आचार का विनाश करे,
पापी की कुसङ्गत से डोर कट जात है ।

इसी प्रकार से संस्कृत के कवियों ने बुरे लोगों के संग करने से बहुत हानि बतायी हैं –

अहो दुर्जनसंसर्गान्मानहानि: पदे-पदे ।
पावको लोहसङ्गेन मुद्गरैरभिहन्यते ।।१।।

दुष्ट व्यक्ति के सम्पर्क से मनुष्य को कदम-कदम पर हानि उठानी पडती है। लोहे का संग करने पर अग्निदेव की भी हथौडी से पिटाई हो जाती है।

असतां सङ्गदोषेण साधवो यान्ति विक्रियाम् ।
दुर्योधनप्रसङ्गेन भीष्मो गोहरणे गत: ।।२।।

दुर्जन मनुष्यों के कुसंग के कारण साधु लोग भी पाप-कर्म मे लिप्त हो जाते है, जैसे कि दुर्योधन के प्रसंग से भीष्म पितामह को भी गोहरण में जाना पडा।

बुद्धिश्च हीयते पुंसां नीचै: सह समागमात् ।
मध्यमैर्मध्यतां याति श्रेष्टतां याति चोत्तमै: ।।

नीच लोगों के समागम से सत्पुरुषों की बुद्धि भी नीच हो जाती है, मध्यमों के समागम से मध्यम हो जाती है और उत्तमों के समागम से उत्तम बन जाती है।

इसलिए उत्तम पुरुषों का ही सत्संग करना चाहिए।

परापकारनिरतैर्दुजनै: सह सङ्गति: ।
वदामि भवतस्तत्त्वं न विधेया कदाचन ।।

जो सदा दूसरों के अपकार में लगे रहनेवाले दुर्जन हैं, उनकी संगति कभी भी नहीं करनी चाहिए – यह मैं आपको तत्त्व से श्रेष्ठ बात बतलाता हूँ।

सद्भिरेव सहासीत, सद्भि: कुर्वीत सङ्गतिम् ।
सद्भिर्विवाहं मैत्रीं च, नासदिभ: किन्चिदाचरेत् ।।

मनुष्यों को चाहिए कि सज्जनों के साथ ही उठे-बैठें और सज्जनों की ही संगति करें। सज्जनों के साथ ही विवाह और मैत्री आदि व्यवहार करने चाहिए। दुर्जनों के साथ कोई मेलजोल न रक्खे।

दुर्वृत्तसङ्ग तिरनर्थपरम्पराया: हेतु: सतां भवति किं वचनीयमत्र ।
लङ्केश्वरो हरति दाशरथे: कलत्रं प्राप्नोति बन्धनमसौ किल सिन्धुराज: ।।

दुराचारियों की संगति सज्जनों के लिए अनर्थ का ही कारण होती है, इसमें अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। राम की पत्नी सीता का हरण तो रावण ने किया, किन्तु रावण की मैत्री से निश्चय ही सिन्धुराज समुद्र को राम के आगे करबद्ध होना पडा।

दुर्जन स्वभाव

दुर्जनं प्रथमं वन्दे, सज्जनं तदनन्तरम् ।
मुखप्रक्षालनात्पूर्वं, गुदप्रक्षालनं यथा ।।

मै प्रथम दुर्जन को नमस्कार करता हूँ और उसके बाद सज्जन को करता हूँ जैसे कि मुख धोने से पूर्व गुदा का प्रक्षालन करना होता है।

❀❀❀

www.thearyasamaj.org

याज्ञवल्क्य - गार्गी संवाद

महर्षि याज्ञवल्क्य

गार्गी – हे याज्ञवल्क्य ! यह जितना जो कुछ है, सब जल से ओतप्रोत है, किंतु वह जल किसमें ओतप्रोत है ?

याज्ञवल्क्य – हे गार्गी, जल में ।

गार्गी – वायु किसमें ओतप्रोत है ?

याज्ञवल्क्य – हे गार्गी, अंतरिक्ष – लोक में ।

गार्गी – अंतरिक्ष – लोक किसमें ओतप्रोत है ?

याज्ञवल्क्य – हे गार्गी, गंधर्वलोकों में ।

गार्गी – गंधर्वलोक किसमें ओतप्रोत है ?

याज्ञवल्क्य – हे गार्गी, आदित्यलोकों में ।

गार्गी – आदित्यलोक किसमें ओतप्रोत है?

याज्ञवल्क्य – हे गार्गी, चंद्रालोकों में ।

गार्गी – चंद्रलोक किसमें ओतप्रोत है ?

याज्ञवल्क्य – हे गार्गी, नक्षत्रलोकों में ।

गार्गी – नक्षत्रलोक किसमें ओतप्रोत है ?

याज्ञवल्क्य – हे गार्गी, देवलोकों में ।

गार्गी – देवलोक किसमें ओतप्रोत है ?

याज्ञवल्क्य – हे गार्गी, इंद्रलोकों में ।

गार्गी – इंद्रलोक किसमें ओतप्रोत है?

याज्ञवल्क्य – हे गार्गी, प्रजापति–लोकों में ।

गार्गी – प्रजापति–लोक किसमें ओतप्रोत है?

याज्ञवल्क्य – हे गार्गी, ब्रह्मलोकों में ।

गार्गी – ब्रह्मलोक किसमें ओतप्रोत है?

याज्ञवल्क्य – हे गार्गी, अतिप्रश्न मत कर । (इस प्रश्न से) तुम्हारा मस्तक कहीं कटकर न गिर जाए । जिसके विषय में अतिप्रश्न नहीं करना चाहिए, तुम उस देवता के विषय में अतिप्रश्न (प्रश्न – सीमा का अतिक्रमण) कर रही हो । हे गार्गी, तुम अतिप्रश्न मत करो ।

(यह सुनकर वचक्नु की पुत्री गार्गी उपरंत और शांत हो गई ।

– बृहदारण्याकोपनिषद् (तृतीय अध्याय, षष्ठ प्रकरण)

पुन:

गार्गी – पूजनीय, ब्राह्मणगण ! आज मैं इनसे (याज्ञवल्क्य से) दो प्रश्न पूछूँगी । यदि ये मेरे उन प्रश्नो के उत्तर दे पाएँगे तो आपमें कोई भी उन्हें ब्रह्मसंबंधी वाद (विवाद) में जीत नहीं सकेगा ।

ब्राह्मणगण – अच्छा गार्गी, पूछो ।

गार्गी – हे याज्ञवल्क्य ! जिस प्रकार काशी या विदेह का निवासी कोई वीर–वंशज व्यक्ति प्रत्यंचाहीन धनुष पर प्रत्यंचा चढाकर शत्रुओं को अतिपीडा देनेवाले दो बाणवान् शर हाथ में लेकर खडा होता है, उसी प्रकार में दो प्रश्नों को लेकर तुम्हारे सामने उपस्थित होती हूं । तुम मुझे उनके उत्तर दो ।

याज्ञवल्क्य – गार्गी, पूछो ।

गार्गी – हे याज्ञवल्क्य ! जो द्युलोक से उपर पृथ्वी से नीचे है । जो द्युलोक और पृथ्वी दोनों के मध्य है । जो स्वयं ही द्युलोक और पृथ्वी है । जिन्हें भूत, वर्तमान तथा भविष्य कहते हैं । वे किसमें ओतप्रोत है?

याज्ञवल्क्य – वे सब आकाश में ओतप्रोत है ।

गार्गी – हे याज्ञवल्क्य ! आपको नमस्कार है, जिन्होंने मुझे इस प्रश्न का उत्तर दे दिया । अब आप दूसरे प्रश्न के लिए सावधान हो जाएँ ।

याज्ञवल्क्य – गार्गी, पूछो ।

गार्गी – हे याज्ञवल्क्य ! आकाश किसमें ओतप्रोत है?

याज्ञवल्क्य – हे गार्गी, उस तत्त्व को ब्रह्मवेत्ता अक्षर कहते है । वह न स्थूल है, न सूक्ष्म, न छोटा है, न बडा है, न लाल है, न द्रव है, न छाया है, न अंधकार है, न वायु है, न आकाश है, न संग है, न रस है, न गंध है, न नेत्र है, न कर्ण है, न वाणी है, न मन है, न तेज है, न प्राण है, न मुख है, न माप है, उसमें न अंतर है, न बाह्य है, वह कुछ भी नहीं खाता, उसे कोई भी नहीं खाता ।

हे गार्गी, इस अक्षर के ही प्रशासन में सूर्य और चंद्रमा विशेष रूप से धारण किए हुए स्थित रहते हैं । इस अक्षर के ही प्रशासन में द्युलोक तथा पृथ्वी विशेषरूप से विधृत एवं स्थित हैं । इस अक्षर के ही प्रशासन में निमेष, मुहूर्त दिवारात्रि, अर्धमास (पक्ष), मास, ऋतु और संवत्सर विशेष रूप से विधृत और स्थित रहते हैं । इस अक्षर के ही प्रशासन में पूर्ववाहिनी तथा अन्य नदियाँ श्वेत पर्वतों से प्रवाहित होती हैं । अन्य पश्चिमवाहिनी नदियाँ जिस जिस दिशा की ओर प्रवाहित होती रहती हैं, उसी का अनुसरण करती रहती हैं । हे गार्गी, इस अक्षर के ही प्रशासन में मनुष्य दाताकी प्रशंसा करते हैं । देवगण यजमान का और पितृगण दर्वीहोम (पितरों के लिए होम) का अनुवर्तन करते हैं ।

www.thearyasamaj.org

हे गार्गी, इस लोक में जो कोई भी अक्षर को न जानकर हवन करता है, यज्ञ करता है, सहस्त्रवर्ष-पर्यंत तप करता है, उसके वे सभी कर्म अंतवान् होते हैं, जो कोई भी इस प्रकार को जाने बिना मरकर इस लोक से जाता है, वह कृपण (दीन) है और हे गार्गी, जो इस अक्षर को समझ-बुझकर इस लोक से मरकर जाता है, वह ब्राह्मण है ।

हे गार्गी, यह अक्षर स्वयं दृष्टि का विषय नहीं, परंतु द्रष्टा है, श्रवण का विषय नहीं, किंतु श्रोता है, मनन का विषय नहीं, किंतु मंता है । स्वयं अविज्ञात रहकर दुसरों का विज्ञाता है । इससे भिन्न कोई द्रष्टा नहीं है, इससे भिन्न कोई श्रोता नहीं है, इससे भिन्न कोई मंता नहीं है, इससे भिन्न कोई विज्ञाता नहीं है । हे गार्गी, निश्चय ही इस अक्षर में ही आकाश ओतप्रोत है ।

गार्गी – पूज्य ब्राह्मणगण ! आप सभी इसी को पर्याप्त समझें कि इस याज्ञवल्क्य जी से नमस्कार-द्वारा ही आपको मुक्ति (छुटकारा) मिल जाए। आपमें से कोई भी कभी इन्हें ब्रह्मविषयक वाद (विवाद) में जीतनेवाले नहीं है । (फिर गार्गी मौन हो गई ।)

– बृहदारण्यकोपनिषद् (तृतीय अध्याय, अष्टम ब्राह्मण)।

याज्ञवल्क्य – आरुणि उद्दालक – संवाद

आरुणि उद्दालक – हे याज्ञवल्क्य ! मैं मद्रदेश में यज्ञशास्त्र का अध्ययन करते हुए कपिगोत्र में उत्पन्न पतंचल के निवास पर रहता था। उसकी भार्या गंधर्व-द्वारा गृहीत थी । (उसकी भार्या पर गंर्धव का आवेश था)मैंने उस गंर्धव से पुछा,'तू कौन है?' उसने कहा,'मैं आथर्वण कबंध हूँ ।' उसने कपिगोत्रीय पतंचल और उसके याज्ञिकों से पूछा,'काप्य, क्या तुम उस सूत्र को जानते हो, जिसके द्वारा यह लोक, परलोक तथा समस्त भूत ग्रथित हैं ?' तब उस, काप्य पतंचल ने कहा, 'भगवन् मैं उसे नहीं जानता ।' उसने काप्य पतंचल और याज्ञिकों से कहा-'काप्य, क्या तुम उस अंतर्यामी को जानते हो, जो इस लोक, परलोक तथा समस्त भूतों को भीतर से नियमित करता है?' उस पतंचल काप्य ने कहा – 'भगवन्, मैं उसे नहीं जानता ।' उसने पतंचल काप्य और याज्ञिकों से कहा – 'काप्य, जो कोई उस सूत्र और उस अंतर्यामी को जानता है, वह ब्रह्मवेत्ता है, वह लोकवेत्ता है, वह देववेत्ता है, वह वेदवेत्ता है, वह भूतवेत्ता है, वहआत्मवेत्ता है, वह सर्ववेत्ता है ।' फिर उस गंधर्व ने उन सभी में उस सूत्र और अंतर्यामी के संबंध में बताया । उसे मैं जानता हूँ । हे याज्ञवल्क्य । यदि उस सूत्र और अंतर्यामी को न जाननेवाले होकर तुम इन गौओं को ले जाओगे, जिनपर ब्रह्मवेत्ता का अधिकार है तो ऐसी दशा में तुम्हारा मस्तक कटकर गिर जाएगा ।

याज्ञवल्क्य – हे गौतम ! मैं उस सूत्र और अंतर्यामी को जानता हूँ ।

आरुणि उद्दालक – ऐसा तो कोई भी कह सकता है कि मैं जानता हूँ , मैं जानता हूँ । (यदि तुम वस्तुतः जानते हो तो) जिस प्रकार तुम जानते हो, वह बताओ ।

याज्ञवल्क्य – हे गौतम ! वायु ही वह सूत्र है । गौतम, वायु-रूप सूत्र से ही वह लोक,परलोक तथा समस्त भूतसमुदाय गुँथे हुए हैं । हे गौतम, इसी कारण मृत पुरुष के लिए ऐसा कहते हैं कि इसके अंग विस्रस्त (विशीर्ण) हो गए है, क्योंकि हे गौतम, वे वायुरूप सूत्र से ही संग्रथित रहते हैं ।

आरुणि उद्दालक – हे याज्ञवल्क्य ! ठीक है । यह तो ऐसा ही है, जैसा तुमने कहा । अब अंतर्यामी का वर्णन करो ।

याज्ञवल्क्य – जो पृथ्वी में रहनेवाला पृथ्वी के भीतर है, जिसे पृथ्वी नहीं जानती, पृथ्वी जिसका शरीर है और जो पृथ्वी के भीतर रहकर पृथ्वी का नियमन करता है, वही तुम्हारी आत्मा अंतर्यामी है । जो जल में रहनेवाला जल के भीतर है, जिसे जल नहीं जानता । जल ही जिसका शरीर है और जो उसके भीतर रहकर जल का नियमन करता है, वह तुम्हारी आत्मा अंतर्यामी अमृत है । जो अग्नि में रहनेवाला अग्नि के भीतर है, जिसे अग्नि नहीं जानती । अग्नि जिसका शरीर है और भीतर रहकर अग्नि का नियमन करता है, वह तुम्हारी आत्मा अंतर्यामी अमृत है । जो अंतरिक्ष में रहनेवाला अंतरिक्ष के भीतर है, जिसे अंतरिक्ष नहीं जानता । अंतरिक्ष जिसका शरीर है और जो अंतरिक्ष के भीतर रहकर अंतरिक्ष का नियमन करता है, वह तुम्हारी आत्मा अंतर्यामी अमृत है ।

जो वायु में रहनेवाला वायु के भीतर है, जिसे वायु नहीं जानती । वायु जिसका शरीर है और जो वायु के भीतर रहकर वायु का नियमन करता है, वह तुम्हारी आत्मा अंतर्यामी अमृत है ।

❀❀❀

www.thearyasamaj.org

चतुरन की बात में बात-बात में बात

आनन्द गहलोत

यूरोपीय भाषाओं के 'स्पीक' (बोलना) की कहानी उन ही की ज़बानी। 'बात' कहां से शुरू और कहां ख़तम। 'बातचीत' का 'चीत' कहां से आया? 'कहानी' शब्द की कहानी। क्या पूरोपीय शब्द 'वॉयस' और संस्कृत 'वचस्' का संबंध है ?

'ज्यो केले के पात में पात-पात में पात, त्यों चतुरन की बात में बात-बात में बात।' ज्ञानी जनों की बातों में गूढार्थ छिपे रहते है। उन पर जितना विचार किया जाय, बातों ही बातों में और नया प्रकट होता रहता है।

युगों पूर्व एक महाज्ञानी ने नैतिकता व मर्यादापूर्ण जीवन का रहस्य एक छोटे-से वाक्य में भरा – 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात' (सच बोलिये प्रिय बोलिये) उनके कहने का मतलब था कि अप्रिय सच बोलने में, शब्दों के चयन में सावधानी बरतिये, नाप-तोल के बोल।

'बोलना' शब्द कहां से आया? 'बोलना' संस्कृत की 'ब्रू' धातु से हमें मिला है। अगर 'बोलना' शब्द न होता तो भी हम बोलते। हमारे पास इसके लिए कथ् (कहना), वद् (बोलना) आदि और भी कई शब्द थे। यूरोप में 'स्पीक' शब्द बहुप्रचलित था। ईरानी 'बातचीत ' को 'गुफ्तगू' कहना पसंद करते थे। 'वद' धातु से 'वादविवाद' (बहस) शब्द बना। अरबी 'बहस' और संस्कृत से भारतीय भाषाओं को मिले 'भाषण' में आपसी संबंध रहा हो, यह संभव है। 'भ' ध्वनि के 'ब' और 'ष' या 'स' के 'ह' में बदलने के हजारों उदाहरण हैं, फिर भी 'भाषण' 'बहस' में बदला हो इस पर बहस की गुंजाइश है।

जहां तक 'बात' शब्द का संबंध है, मेरी खोज के अनुसार 'बात' 'ब्रू' धातु से निकला है। कुछ भाषाशास्त्रियों का निष्कर्ष है कि 'बात' 'वार्ता' का अपभ्रंश रुप है। संस्कृत में 'वार्ता' का अर्थ है – अफवाह, जनश्रुति, संवाद, वृत्तान्त, हाल, विषय, मामला, बातचीत। 'वार्ता' का 'वैश्यवृत्ति' अर्थ अब प्रचलन में नहीं रहा है। 'वार्तालाप' का अर्थ भी बातचीत है।

आप पुछेंगे कि 'बातचीत' में ची कहां से आया? बात करते हुए बात करनेवला सोचता-विचारता या कुछ चिंतन-सा भी करता है। 'चिंतन' 'चीत' बन कर बात का हिस्सा बन गया।

'वक्ता' संस्कृत की 'वच्' (बोलना, वर्णन करना) धातु से बना है। वाक्, वाचः वचस्, वाक्य, वाचक, वक्तव्य, वचन, वाङ्मय (साहित्य, शब्दों से युक्त) ये सभी 'वच' धातु से बने हैं। एक तरफ 'बक्की' और 'बकबक' दूसरी तरफ वाग्देवता, वाग्देवी (सरस्वती) वाचस्पति (बृहस्पति का नाम) वाक् चतुर ये सभी शब्द 'वच्' धातु की देन है। यूरोप को 'वचस्' से ही 'वॉयस्' शब्द मिला है। 'वॉयस' का अर्थ विस्तार तेजी से हो रहा है। कभी इस शब्द का अर्थ वाणी, आवाज , कंठ, स्वर था; फिर विचार, राय, कथन, अभिव्यक्ति हुआ। अप तो बढ़ते-बढ़ते (बोलने का) 'अधिकार' अर्थ भी होगया है।

फारसी में 'बातचीत' के लिए 'गुफ्तगू' शब्द है। यह फारसी क्रिया 'गुफ्तन' से बना है। 'गुफ्तन' पुरानी फारसी के 'गुब' से बना और 'गुब' संस्कृत के 'गो' शब्द से। संस्कृत में 'गो' शब्द के अर्थों की लम्बी सूची है। एक अर्थ है – 'वाणी', सरस्वती। 'वाणी' अभिव्यक्ति का साधन है। फारसी में 'गो' का अर्थ 'गाय' के अलावा है 'कहनेवाला' जैसे 'कानूनगो'। 'गुफ्तनी' का अर्थ है 'कथनीय'।

'कथनीय' शब्द 'कथ्' धातु से बना है। हिंदी – उर्दू तक आते-आते 'कथ्' 'कहना' हो गया। 'कथा' शब्द संस्कृत से भारतीय भाषाओं को विरासत में मिला है; लेकिन इसी अर्थ में 'कहानी' शब्द अवश्य 'कहना' से बना होगा। हिंदी भाषा के कुछ कोशकार 'कहानी' शब्द की कहानी की शुरुआत संस्कृत का 'कथानिका' शब्द से मानते हैं। हिंदी-उर्दू को यह नया शब्द गढने का उचित गौरव न देनें में उनसे कहीं भूल तो नहीं हो गयी?

संस्कृत ने 'कथा' शब्द की विशुद्ध परम्परा में हमें कथन, कथ्य, कथानक, कथावस्तु, कथोपकथन, कथनीय और कथित जैसे शब्द दिये। 'कहना' के उच्चारण में 'कथ्' के 'थ' की कठोरता खत्म हो गयी। 'कथावाचक' शब्द पौराणिकता की बू लिए हुए है; जबकि 'कहानी लेखक', 'कथालेखक' शब्द आधुनिक लेखन संदर्भ में है।

जैसे 'वाचम्' और 'वॉयस' का संबंध है, वैसे ही 'आवाज' और आवाहन/आह्वान का भी संबंध है। फारसी में संस्कृत ध्वनि 'ह' 'ज' में बदली, जैसे 'बाहु' बन गया 'बाजू'। अरबी के 'बयान' और संस्कृत के वर्णन का कोई संबंध है, इस पर अभी और खोज जरूरी है। किसी दृश्य का वर्णन करना या उसे बयान करना एक ही बात है।

फारसी के 'पुर्सिश' (पूछताछ) और संस्कृत की 'प्रच्छ' (पूछना) धातु को एक दूसरे का अर्थ पूछने की जरूरत नहीं।

यूरापीय भाषाओं का 'स्पीक' (बोलना) वैदिक भाषा ने 'स्फुर' से प्रस्फुरित है, इस पर यूरोपीय भाषाशास्त्री एकमत हैं। 'स्फुर' से 'स्टू' और स्प्रिंकल (छिडकना, बिखेरना) शब्द बने है। जब कोई 'स्पीक' (बोलता) है, तो मुंह से शब्द बिखरते हैं। यूरोपीय भाषाशास्त्रियों की इस खोज की दाद देनी होगी।

संस्कृत में 'वद्' का अर्थ भी बोलना है। 'वादविवाद' को इसी शब्द ने जन्म दिया। इसी से बना वादी अैर प्रतिवादी। यह सौ फीसदी सच है कि अदालतों में से हर वादी-प्रतिवादी में से पचास प्रतिशत झूठ होते हैं। कहीं बात का बतंगड तो नहीं बन रहा है ?

❀❀❀

www.thearyasamaj.org

नूतन निष्काम पत्रिका वर्ष-४ अंक-९ मुम्बई सितम्बर - २०१३ पृष्ठ-१६ मूल्य- रु. ९/-

भाद्रपद २०७० (सितम्बर २०१३) Post Date : 25-9-2013 MH/MR/N/136/MBI/-13-15 MAHRIL 06007/31/12/2015-TC पोष्ट आफिस : सांताक्रुज़ (प.)

आर्य समाज सान्ताक्रुज मुम्बई का मुखपत्र

संपादक : संगीत आर्य

मुद्रक एवं प्रकाशक : चन्द्रपाल गुप्त द्वारा कृष्ण प्रिंटींग प्रेस, २६, मंगलदास रोड, मुंबई-२. से मुद्रित कराकर आर्य समाज भवन, वी. पी. रोड, (लिंकिंग रोड़), सान्ताक्रुज़ (प.) मुंबई-४०० ०५४. से प्रकाशित किया। दूरभाष : २६६० २८००/२६६०२०७५/२२९३१५१८

प्रति, ______

टिकट

विचार शक्ति का चमत्कार - ३

(मनचाही वस्तु पाने का विज्ञान)

मन, बुद्धि, चित्त व अहं जो मनुष्य को प्राप्त है वह परमात्मा की ओर से वरदान है। इस अंत:करण की शक्ति असीम है जिसे हमें पहचानना चाहिए। इस अवचेतन मन मे इतनी शक्ति समाहित है जो कि विचारों की तरंगों को पकडकर चित्त में से अंकित करता हुआ वास्तविकता में परिवर्तित करने में सक्षम है। जीवन भर इन विचारों की शक्ति को पहचानने की अनबुझी प्यास को बुझाने के प्रयास में तीर्थ स्थानों एवं संतों के चक्कर लगाते रहते हैं, भटकतें रहते हैं लेकिन किसी ठोस गंतव्य पर पहुंच नहीं पाते। यदि मैं समझूँ कि मैं कुझ भी कर सोचूँ या कर्म करूँ लेकिन फल मुझे अच्छा ही प्राप्त हो, ऐसा संभव नहीं हैं। सही दिशा में विचार करना ही जीवन की सफलता का मूल मन्त्र है। और यह विचार शक्ति हमें ईश्वर की स्तुति प्रार्थना या शुभकामों के संस्कारों को चित्त में अंकित करने से प्राप्त होगी। जिस पर हमें बिना शर्त विश्वास होना चाहिए। मेरा मानना है कि इस अन्त:करण को कर्म क्षेत्र बनाए जिसमें पुण्य कर्मो को अंकित करते रहें, हर पल क्षण परोपकार के बीज इसमें बोते रहो, हृदय की हर धडकन के साथ ओ३म् नाम की ध्वनि निकलती रहे, बस फिर तो जीवन जीने का आनंद आ जाएगा। आइए विचार शक्ति से किसी प्रकार हम मनचाही वस्तु प्राप्त कर सकते हैं उसका व्यवहारिक पहलु निम्नलिखित क्रम से देखें :

१) अपना लक्ष्य स्थापित करें – हमारा लक्ष्य कोई भी हो सकता है, कुछ भी हो सकता है लेकिन वह समाज विरोधी या कानून विरोधी नहीं होना चाहिए। अपना लक्ष्य प्राप्त करते समय हम किसी के अधिकारों का हनन नहीं करें ऐसा महान लेखक नेपोलियन हिल ने अपनी विश्व विख्यात पुस्तक The Law of Success में लिखा है।

२)सपने देखना आरम्भ करें – यदि आप पायलेट बनना चाहते हैं तो अपने आप को एरोप्लेन के अंशभाग में बैठा हुआ देखते रहें कि आप हवाई जहाज उडा रहे हैं या फिर यदि आप ऐसे घर की कल्पना कर रहें हैं जो कि समुद्र किनारें हों या हवा-पानी का पूर्ण रूप से वास हो या आप एक अच्छे नेता बनना चाहते हैं या फिर कोई धर्मगुरु या संत जिसके सामनें लाखों लोग बैठे प्रवचन सुन रहे हो तो ऐसा सपना देखना आरम्भ कर दें और निरंतर देखें ताकि आपका अतर मन उसे पकड लें और वास्तविकता में परिवर्तित कर दे।

३) अपनी कल्पना को बडे कागज पर लिखें या उसका चित्र बनाए – इस चित्र को अपने कमरे में या घर में ऐसी जगह पर टाँग दें ताकि उस पर आपकी नजर आते-जाते हर बार पडती रहें। ऐसा करने से कुछ ही समय में आप महसूस करने लगेंगे कि आपकी परिकल्पना ने यथार्थ रूप लेना आरम्भ कर दिया हैं।

४) अपने लक्ष्य के लिए कार्य करना आरम्भ कर दें – यदि कोई विचार इतनी तीव्रता से आप पर असर कर रहा हैं तो यकिन मानिए कि आप स्वत: ही उस ओर कार्य करना आरम्भ कर देंगे जिसका आपको पता ही नहीं चलेगा कि कब आपने बाध्य कर्म करना शुरु कर दिया हैं।

५) अपने ध्येय पर विश्वास कीजिए – आपको मूल रूप से विश्वास होना चाहिए कि जो मेरा लक्ष्य हैं वह मेरी जरूरत हैं, उसके मैं योग्य हूँ तो यकीन मानिए की आपको अपनी मनचाही वस्तु प्राप्त करने में ज्यादा वक्त नहीं लगेगा। मूल बात तो यह है कि हमें अपने ऊपर और परमात्मा पर बिना शर्त विश्वास होना चाहिए।

६) मनचाही वस्तु प्राप्त करने के लिए तैयार हो जाइये – इतना सफर तय करने के उपरान्त आप अपने लक्ष्या को प्राप्त करने के लिए तैयार हो चुके हैं।

उपलिखित क्रम को यदि हमने अपने जीवन में उतारा तो जीवन में सफलता प्राप्त करने से हमें कोई रोक नहीं सकता। शेष अगले अंक में।

राजकुमार बी. गुप्ता
एफ्-३१, आरएच्-६, सेक्टर ६,
वाशी, नवी मुंबई -४००७०३.

❀❀❀